Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 ISSN No: 3049-4176

सुशीला टाकभौरे के उपन्यासों में स्त्री का बदलता स्वरूप: 'वह लड़की' के परिप्रेक्ष्य में

प्रियंका शर्मा
(शोध छात्रा)
डॉ कंचना सक्सेना,
(शोध निर्देशिका), पूर्व प्राचार्य एवं प्रोफेसर
कोटा, विश्वविद्यालय ,राजस्थान.

सारांश
सुशीला टाकभौरे के उपन्यासों में स्त्री का बदलता स्वरूप विशेष रूप से *'वह लड़की'* के माध्यम से प्रभावशाली रूप में उभरकर सामने आता है। यह उपन्यास स्त्री के पारंपरिक दमन, जातिगत शोषण और पितृसत्तात्मक बंधनों को उजागर करते हुए स्त्री-चेतना, प्रतिरोध और सशक्तिकरण के नए आयाम प्रस्तुत करता है। शैला, निशा, नमिता और शम्मा जैसे पात्र केवल पीड़ित नारी का प्रतिनिधित्व नहीं करते, बल्कि परिवर्तन, जागरूकता और आत्मसम्मान की प्रतीक के रूप में उभरते हैं। उपन्यास में बाल-विवाह, दहेज, पुत्र-प्रेम, घरेलू हिंसा, स्त्री-शिक्षा की उपेक्षा और सामाजिक रूढ़ियों जैसे मुद्दों को अत्यंत यथार्थपरक तरीके से प्रस्तुत किया गया है। टाकभौरे स्त्री को सीमित और निष्क्रिय भूमिका से बाहर निकालकर उसे संघर्षशील, निर्णयक्षम और स्वायत्त व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत करती हैं। इस प्रकार *'वह लड़की'* दलित स्त्री-विमर्श का एक महत्त्वपूर्ण पाठ बनकर स्त्री-मुक्ति और समानता की दिशा में सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता को रेखांकित करता है।

संकेत शब्द: स्त्री-सशक्तिकरण, दलित स्त्री-विमर्श, सामाजिक चेतना, पितृसत्ता और शोषण, प्रतिरोध और परिवर्तन।

भूमिका

सुशीला टाकभौरे के उपन्यासों में स्त्री का बदलता स्वरूप विशेष रूप से उस सामाजिक यथार्थ को उद्घाटित करता है जिसमें दलित और सामान्य वर्ग की महिलाएँ सदियों से चली आ रही परम्पराओं, कुप्रथाओं, जातिगत दमन और पितृसत्ता के दोहरे बोझ तले दबती

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 ISSN No: 3049-4176

रही हैं। उनका उपन्यास *'वह लड़की'* नारी-जीवन के इसी संघर्ष, विद्रोह और परिवर्तनशील चेतना का सशक्त दर्पण है। इस उपन्यास में स्त्री-विमर्श केवल स्त्री की व्यथा का बयान नहीं करता, बल्कि उसे अपने अधिकारों, आत्म-सम्मान, शिक्षा, निर्णय-क्षमता और आत्मनिर्भरता की दिशा में अग्रसर होने के लिए प्रेरित करता है। सुशीला टाकभौरे अपने कथा-संसार में स्त्री को केवल पीड़िता के रूप में प्रस्तुत नहीं करतीं; वह उसे प्रतिरोध, परिवर्तन और सामाजिक जागरण की वाहक के रूप में स्थापित करती हैं। दलित स्त्री की त्रिस्तरीय पीड़ा—जाति, वर्ग और लिंग—के बीच पनपती हुई उनकी स्त्रियाँ संघर्ष की आग में तपकर अधिक दृढ़, मुखर और जागरूक बनकर सामने आती हैं। उपन्यास की नायिका 'शैला' केवल एक पात्र नहीं, बल्कि एक विचारधारा है, जो समाज में मौजूद रूढ़ियों और स्त्री-विरोधी मानसिकताओं को चुनौती देती है। बाल-विवाह, दहेज, पुत्र-प्रेम, घरेलू हिंसा, आर्थिक निर्भरता और सामाजिक प्रतिबंध जैसे मुद्दे इस उपन्यास में जीवन्त रूप में उभरते हैं, जो समकालीन समाज की वास्तविक तस्वीर प्रस्तुत करते हैं। साथ ही, यह उपन्यास एक नई सामाजिक दिशा भी प्रदान करता है, जिसके अनुसार स्त्री केवल घर की परिधि तक सीमित नहीं है, बल्कि शिक्षा, रोजगार, सामाजिक संगठन और आंदोलन के माध्यम से अपनी स्थिति और पहचान का पुनर्निर्माण कर सकती है। 'वह लड़की' में व्यक्त स्त्री की बदलती चेतना दलित साहित्य की उस परम्परा का विस्तार है जो विमर्श को संघर्ष की भूमि पर स्थापित करती है। इस प्रकार, यह शोध-पत्र सुशीला टाकभौरे के साहित्यिक योगदान का विश्लेषण करते हुए, उनके उपन्यासों में स्त्री के बदलते स्वरूप को विशेष रूप से *'वह लड़की'* के संदर्भ में समझने का प्रयत्न करता है, ताकि नारी-चेतना, प्रतिरोध और सशक्तिकरण के बहुआयामी स्वरूपों को गहराई से रेखांकित किया जा सके।

अध्ययन का औचित्य

सुशीला टाकभौरे के उपन्यासों में स्त्री का बदलता स्वरूप अध्ययन का विषय इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि उनकी रचनाएँ दलित स्त्री-जीवन की त्रिस्तरीय पीड़ा—जाति, वर्ग और लिंग—को वास्तविक रूप में सामने लाती हैं। विशेषतः *'वह लड़की'* के माध्यम से टाकभौरे न केवल स्त्री के उत्पीड़न को उजागर करती हैं, बल्कि उसके भीतर उभरती प्रतिरोध-चेतना, आत्मसम्मान और सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा को भी रेखांकित करती हैं। यह अध्ययन आवश्यक इसलिए भी है क्योंकि समकालीन समाज में पितृसत्ता,

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 ISSN No: 3049-4176

दहेज, बाल-विवाह, हिंसा, भेदभाव और स्त्री-शिक्षा की उपेक्षा जैसी समस्याएँ आज भी व्यापक रूप से मौजूद हैं। 'वह लड़की' इन मुद्दों पर नया विमर्श प्रस्तुत करते हुए यह दिखाती है कि स्त्री यदि शिक्षित, जागरूक और आत्मनिर्भर बनती है तो वह अपनी परिस्थितियों और सामाजिक संरचनाओं को बदलने की क्षमता रखती है। अतः यह अध्ययन स्त्री-मुक्ति और दलित साहित्य की दृष्टि से अत्यंत सार्थक और प्रासंगिक सिद्ध होता है।

उद्देश्य एवं प्रासंगिकता

सुशीला टाकभौरे के उपन्यासों में स्त्री का बदलता स्वरूप, विशेष रूप से *'वह लड़की'* के संदर्भ में, अध्ययन का उद्देश्य दलित और सामान्य वर्ग की स्त्री-चेतना में आए परिवर्तन को समझना है। यह शोध इस बात को स्पष्ट करता है कि किस प्रकार स्त्रियाँ सदियों से चले आ रहे दमन, परम्पराओं, जातिगत भेदभाव और पितृसत्तात्मक सत्ता-व्यवस्था का सामना करते हुए प्रतिरोध और आत्मनिर्भरता की दिशा में आगे बढ़ती हैं। प्रमुख उद्देश्य यह रेखांकित करना है कि शिक्षा, जागरूकता, आत्मसम्मान और सामाजिक संगठनों के माध्यम से स्त्री अपनी परिस्थितियों को बदलने की क्षमता प्राप्त करती है। *'वह लड़की'* में शैला, निशा, नमिता और शम्मा जैसे पात्र इस परिवर्तन के विविध आयामों को साकार करते हैं। इस अध्ययन की प्रासंगिकता इसलिए भी बढ़ जाती है क्योंकि आज भी समाज में स्त्री के प्रति समानता, सम्मान और अधिकारों की प्राप्ति अधूरी है। बाल-विवाह, दहेज, घरेलू हिंसा, असमान अवसर, आर्थिक निर्भरता और जातिगत उत्पीड़न जैसी समस्याएँ यथावत मौजूद हैं। ऐसे समय में यह शोध यह दर्शाता है कि स्त्री का सशक्त होना केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता है। टाकभौरे का साहित्य स्त्री-मुक्ति, आत्मसम्मान और सामाजिक न्याय की दिशा में एक महत्वपूर्ण दस्तावेज़ के रूप में उभरता है, जो इस अध्ययन को समकालीन विमर्श में अत्यंत प्रासंगिक बनाता है।

सुशीला टाकभौरे: जीवन, रचनाएँ और साहित्यिक योगदान

सुशीला टाकभौरे समकालीन हिन्दी दलित साहित्य की प्रमुख और सशक्त रचनाकार हैं, जिन्होंने अपने कथा-साहित्य, आत्मकथात्मक रचनाओं और उपन्यासों के माध्यम से दलित स्त्री-जीवन के संघर्ष, चेतना और सामाजिक यथार्थ को अत्यंत प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत किया है। सामाजिक रूप से विषम परिस्थितियों में जन्म लेने के कारण उन्होंने बचपन से ही असमानता, भेदभाव और शोषण के विविध रूपों को अनुभव किया, जिसने उनकी

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 ISSN No: 3049-4176

लेखनी को संवेदनात्मक आधार और सामाजिक दृष्टि प्रदान की। उनके द्वारा रचित *'वह लड़की'*, *'ज़रा समझो'*, *'कबूतरी'*, *'बलात्कारी'* जैसी कृतियाँ न केवल साहित्यिक स्तर पर महत्त्वपूर्ण हैं, बल्कि समाज में व्याप्त जाति-आधारित उत्पीड़न, पितृसत्तात्मक मानसिकता और स्त्रियों की त्रिस्तरीय पीड़ा को भी उजागर करती हैं। दलित साहित्य में सुशीला टाकभौरे का स्थान अत्यंत विशिष्ट है क्योंकि वे साहित्य को संघर्ष का उपकरण मानती हैं और उनकी रचनाएँ प्रतिरोध, जागरण और परिवर्तन का स्वर लिए होती हैं। वे स्त्री को केवल पीड़िता के रूप में नहीं बल्कि परिवर्तन-कारिणी शक्ति के रूप में स्थापित करती हैं। उनकी सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि डॉ. भीमराव आंबेडकर के मानवतावादी सिद्धांतों—समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व—से प्रभावित है, जिसके आधार पर वे वर्ण-व्यवस्था, लैंगिक भेदभाव और सामाजिक रूढ़ियों की तीखी आलोचना करती हैं। उनके साहित्य की विशिष्टता यह है कि उसमें दलित स्त्री की आवाज स्वयं उसकी अपनी भाषा, अनुभव और मनोवृत्ति से उभरती है, न कि बाहरी दृष्टिकोण से। टाकभौरे की विचारधारा में स्त्री-सशक्तिकरण, शिक्षा, आत्मनिर्भरता, सामाजिक न्याय और मनुवादी संरचना के विरोध का प्रखर स्वर मिलता है। वे मानती हैं कि स्त्री की वास्तविक मुक्ति तभी संभव है, जब वह स्वयं अपनी परिस्थितियों को बदलने का प्रयास करे और समाज अपनी जड़ मानसिकताओं से मुक्त हो। उनके साहित्यिक योगदान ने हिन्दी दलित कथा-साहित्य को एक नई दिशा प्रदान की है, जिसमें स्त्री संघर्ष, चेतना और स्वाभिमान केंद्र में हैं। इस प्रकार सुशीला टाकभौरे न केवल दलित साहित्य की अग्रणी लेखिका हैं, बल्कि समकालीन स्त्री-विमर्श को भी सशक्त आधार प्रदान करने वाली महत्वपूर्ण साहित्यकार हैं।

उपन्यास 'वह लड़की': एक परिचय

सुशीला टाकभौरे का उपन्यास *'वह लड़की'* दलित स्त्री-जीवन, सामाजिक शोषण और नारी चेतना के बहुआयामी स्वरूप का मार्मिक तथा यथार्थपरक चित्रण प्रस्तुत करता है। यह उपन्यास उन स्त्रियों की कथा है जो जाति, वर्ग और लिंग—तीनों स्तरों पर दमन का सामना करते हुए प्रतिरोध, जागरूकता और आत्मनिर्भरता की ओर आगे बढ़ती हैं। कथानक का केंद्रबिंदु नायिका शैला है, जो अपने आसपास के स्त्री-जीवन में व्याप्त दुख, अन्याय और असमानता को देखती-सहती हुई धीरे-धीरे सामाजिक परिवर्तन की वाहक बन जाती है। उपन्यास का कथानक केवल व्यक्तिगत संघर्षों तक सीमित नहीं है; यह दलित समाज की जटिल वास्तविकताओं—बाल-विवाह, दहेज-प्रथा, बालिका-हत्या, घरेलू

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 ISSN No: 3049-4176

हिंसा, स्त्री-शिक्षा की कमी, आर्थिक निर्भरता और पितृसत्तात्मक मानसिकता—को भी उजागर करता है। प्रमुख पात्र शैला, निशा, नमिता और शम्मा अपने-अपने जीवन के अनुभवों के माध्यम से स्त्री शोषण के भिन्न परंतु गहरे आयामों को सामने लाते हैं। शैला शिक्षित, साहसी और जागरूक महिला है, जो अपने आसपास की महिलाओं को संगठित कर उनके अधिकारों के प्रति उन्हें जागरूक करती है। इसके विपरीत शम्मा एक ऐसी स्त्री है जो बाल-विवाह, गरीबी और पति के अत्याचारों की शिकार होकर सामाजिक कुप्रथाओं की त्रासदी बन जाती है। नमिता दहेज और घरेलू हिंसा का सामना करती है, जबकि निशा शिक्षा और जागरूकता के बल पर सामाजिक बंधनों को चुनौती देती है। इन पात्रों का सामाजिक संदर्भ व्यापक समुदाय की उस वास्तविकता से जुड़ता है जहाँ जाति और लिंग मिलकर स्त्री को दोहरा शोषण झेलने के लिए बाध्य कर देते हैं। उपन्यास अपने पात्रों के माध्यम से यह संदेश देता है कि स्त्री यदि शिक्षा, चेतना और आत्मनिर्भरता का मार्ग अपनाए तो वह अपनी नियति को बदल सकती है और सामाजिक संरचना में भी परिवर्तन ला सकती है। इस प्रकार *'वह लड़की'* एक साधारण कथा न होकर दलित स्त्री-विमर्श का सशक्त दस्तावेज़ बनती है, जो स्त्री संघर्ष, प्रतिरोध और मुक्ति की दिशा में प्रेरणात्मक शक्ति प्रदान करती है।

नायिका 'शैला' का बदलता स्वरूप और चरित्र-विश्लेषण

शैला *'वह लड़की'* उपन्यास की केंद्रीय नायिका है, जिसका व्यक्तित्व दलित स्त्री-जीवन में उभरती नई चेतना, विद्रोह और प्रतिरोध का प्रतीक है। शैला का चरित्र धीरे-धीरे विकसित होता हुआ दिखाई देता है—जहाँ प्रारंभ में वह समाज की रूढ़ियों को समझने की प्रक्रिया में है, वहीं आगे चलकर वह उन पर प्रश्न उठाने वाली और उनका विरोध करने वाली सशक्त स्त्री बनकर उभरती है। शैला अपनी सहेलियों—शम्मा, नमिता और निशा—के जीवन में व्याप्त पीड़ा, हिंसा, घरेलू उत्पीड़न और जातीय शोषण को निकट से देखती है, जो उसे भीतर तक झकझोर देता है। बाल-विवाह, दहेज, लगातार गर्भधारण, पुत्र-प्रेम और स्त्री पर लगाए गए बंधनों ने उसके भीतर विद्रोह की ज्वाला उत्पन्न की। वह स्वयं महसूस करती है कि स्त्री का मौन ही उसके शोषण को और बढ़ाता है। इसलिए वह स्त्रियों को समझाती है कि अन्याय को चुपचाप सहने के बजाय उसका प्रतिरोध करना आवश्यक है। नमिता के पति द्वारा बाल काटकर अपमानित किए जाने पर शैला उसे विरोध के लिए प्रेरित करती है, जिसके परिणामस्वरूप नमिता अपने अधिकारों के लिए खड़ी होती है।

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 ISSN No: 3049-4176

इसी प्रकार, शैला शोषित स्त्रियों को समझाती है कि हिंसा, दमन और पितृसत्ता से मुक्ति केवल प्रतिरोध और संघर्ष से संभव है। इस अर्थ में शैला का चरित्र विद्रोह, प्रतिरोध और स्त्री-सशक्तिकरण का सशक्त प्रतिनिधि बनता है, जो दलित स्त्री-विमर्श की केंद्रीय धुरी है।

दूसरे स्तर पर शैला केवल व्यक्तिगत प्रतिरोध तक सीमित नहीं रहती, बल्कि सामाजिक चेतना और नेतृत्व क्षमता का अद्भुत परिचय देती है। वह समझती है कि स्त्रियों की समस्याएँ केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि सामूहिक और संरचनात्मक हैं, इसलिए उनका समाधान भी सामूहिक प्रयासों से ही संभव है। इसी सोच के साथ वह महिलाओं को संगठित करती है, उन्हें शिक्षा, श्रम और आत्मनिर्भरता का महत्व समझाती है तथा उन्हें सामाजिक आंदोलनों से जोड़ती है। शैला "अखिल भारतीय दलित महिला जागृति" जैसी संस्था से जुड़कर देशभर की दलित तथा पिछड़ी महिलाओं को संगठन, अधिकार और जागरूकता प्रदान करने का कार्य करती है। उसके भाषणों में आत्मविश्वास, प्रखरता और साहस दिखाई देता है—वह कहती है, "हम भारत देश की नारी हैं, हम फूल नहीं, चिंगारी हैं।" यह वाक्य उसके नेतृत्व की ऊर्जस्विता और परिवर्तन की आकांक्षा को स्पष्ट करता है। अपनी सहेली निशा के जीवन में हुए उत्पीड़न, रेणुका की पीड़ा और समाज की स्त्री-विरोधी मानसिकता को देखकर शैला का संघर्ष और अधिक मजबूत होता है। वह स्त्रियों को भय, अंधविश्वास और दमन से मुक्त होने के लिए प्रेरित करती है। शैला का चरित्र इस प्रकार एक साधारण स्त्री से विकसित होकर सामाजिक न्याय, समानता और स्त्री-मुक्ति की दिशा में कार्यरत नेता के रूप में उभरता है। यही उसकी विशिष्टता है, जो *'वह लड़की'* को दलित स्त्री-विमर्श का सशक्त और प्रेरणादायक पाठ बनाती है।

नमिता एवं शम्मा का स्त्री-जीवन: शोषण से प्रतिरोध तक

नमिता और शम्मा *'वह लड़की'* उपन्यास की दो महत्त्वपूर्ण स्त्री-पात्र हैं, जिनके जीवन-संघर्ष दलित एवं सामान्य स्त्रियों के बहुआयामी शोषण को अत्यंत यथार्थपरक रूप में उजागर करते हैं। शम्मा का जीवन बाल-विवाह, कुपोषण, लिंग-भेद और घरेलू हिंसा का प्रतीक बनकर उभरता है। मात्र पंद्रह वर्ष की उम्र में उसकी शादी कर दी जाती है, क्योंकि समाज में बेटियों को बोझ मानने की मानसिकता गहरी जड़ें जमा चुकी है। बार-बार पुत्र-जन्म हेतु दबाव के कारण वह चार बेटियों की माँ बनती है और लगातार गर्भधारण, गरीबी तथा काम के बोझ से कमजोर होकर अंततः असमय मृत्यु को प्राप्त होती है। उसकी पीड़ा

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 ISSN No: 3049-4176

यह स्पष्ट करती है कि परम्पराओं, अज्ञान, स्त्री-शिक्षा की अनुपस्थिति और पितृसत्ता ने स्त्री को किस तरह जीवित रहते हुए भी मृत्यु के समान स्थितियों में धकेल दिया है। दूसरी ओर, नमिता का जीवन दहेज-उत्पीड़न और मानसिक अत्याचार का प्रतीक है। पिता ने कर्ज लेकर उसकी शादी तो कर दी, परंतु ससुराल वालों के ताने, अपमान और "कम दहेज" का आरोप उसके व्यक्तित्व को लगातार चोट पहुँचाते रहते हैं। पति भी अपमानजनक प्रश्नों और अवमानना से उसे मानसिक रूप से तोड़ता है। यह स्थिति दिखाती है कि स्त्री केवल दहेज के आधार पर वस्तु की तरह आंकी जाती है, और विवाह संस्था पितृसत्ता का उपकरण बनकर स्त्री को सामाजिक कैद में बदल देती है।

इन दोनों पात्रों के अनुभवों में गहरे दुख के बावजूद परिवर्तन और आत्मनिर्णय की चेतना की मजबूत लहर दिखाई देती है। शम्मा अपने अंतिम दिनों में भी समझती है कि मौन ही अन्याय को बढ़ाता है, जबकि नमिता में यह चेतना उसकी सहेली शैला के माध्यम से विकसित होती है। शैला उसे समझाती है कि अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठाए बिना बदलाव संभव नहीं। जब उसके पति द्वारा बाल काटकर उसे अपमानित किया जाता है, तभी नमिता पहली बार विद्रोह करती है और यही प्रतिरोध उसके जीवन का निर्णायक मोड़ साबित होता है। उसके बाद ससुराल वाले उससे भयभीत होकर अमानवीय व्यवहार बंद कर देते हैं। दूसरी ओर, शम्मा की त्रासदी समाज की चेतना को झकझोरती है—उसका असमय अंत यह संदेश देता है कि यदि स्त्री स्वयं जागरूक न हो और समाज अपनी सोच न बदले, तो पीढ़ियों तक स्त्रियाँ इसी दमन और पीड़ा के चक्र में फँसी रहेंगी। नमिता और शम्मा दोनों इस उपन्यास की स्त्री-अनुभूति के केंद्रीय ध्रुव हैं—एक पीड़ा की पराकाष्ठा का प्रतीक है, तो दूसरी प्रतिरोध की शुरुआत का। उनके अनुभव यह स्पष्ट करते हैं कि परिवर्तन की पहली शर्त स्त्री की जागृति है—जब वह अपने अधिकार, सम्मान और अस्तित्व के लिए खड़ी होती है, तब ही समाज में वास्तविक परिवर्तन संभव होता है। इन पात्रों के माध्यम से उपन्यास यह संदेश देता है कि प्रतिरोध ही शोषण को तोड़ने का मार्ग है, और आत्मनिर्णय की चेतना स्त्री-मुक्ति की सबसे सशक्त आधारशिला है।

निशा का संघर्ष

निशा *'वह लड़की'* उपन्यास में एक ऐसे चरित्र के रूप में उभरती है, जो दलित स्त्री-जीवन के संघर्षों, आकांक्षाओं और उपलब्धियों का ज्वलंत प्रतिनिधित्व करती है। आर्थिक तंगी, पारिवारिक असमानता और लैंगिक भेदभाव के बावजूद उसने अपने जीवन में शिक्षा को

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 ISSN No: 3049-4176

सर्वोपरि महत्व दिया। घर में स्थिति यह थी कि पैसों की कमी के चलते लड़कियों की पढ़ाई पहले रोकी जाती थी, परंतु निशा बचपन से ही इस अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाती रही। वह स्पष्ट कहती है— *"क्या लड़कियों को पढ़ने और आगे बढ़ने का अधिकार नहीं है? जो सुविधाएँ भाइयों को मिलती हैं, वे हमें भी मिलनी चाहिए।"* लड़कों के समान अवसर न मिलने पर भी निशा ने हार नहीं मानी और मेहनत-मजदूरी कर न केवल अपनी, बल्कि अपनी दोनों बहनों की शिक्षा पूरी करवाई। यह वह क्षण है जहाँ शिक्षा उसकी स्वतंत्रता और आत्मनिर्भरता का आधार बनती है। निशा का संघर्ष यह बताता है कि आर्थिक आत्मनिर्भरता स्त्री-मुक्ति की पहली शर्त है, क्योंकि आर्थिक रूप से सक्षम स्त्री ही अपने अधिकारों के लिए खड़ी हो सकती है। आगे चलकर निशा और उसकी बहनों ने अंतरजातीय विवाह कर सामाजिक रूढ़ियों को भी चुनौती दी, जिससे यह सिद्ध होता है कि शिक्षा स्त्री को निर्णय-क्षमता और सामाजिक प्रतिबंधों से मुक्ति प्रदान करती है।

निशा का संघर्ष केवल व्यक्तिगत स्तर तक सीमित नहीं है; वह नारी-स्वतंत्रता और स्वाभिमान की सशक्त प्रतीक बनती है। विवाह के बाद भी उसके जीवन में समस्याएँ कम नहीं होतीं—उसका पति उससे अपेक्षा करता है कि वह "पतिव्रता", "अनुगामिनी" और "सहनशील" दासी की तरह व्यवहार करे। यह पितृसत्तात्मक मानसिकता निशा के स्वाभिमान और व्यक्तित्व को आहत करती है। निशा इस विचारधारा को खारिज करती है और स्पष्ट करती है कि स्त्री केवल पति की सेवा के लिए नहीं बनी, बल्कि वह समाज और परिवार दोनों में समान भागीदारी रखती है। पति के तानाशाही व्यवहार और अवमानना से तंग आकर निशा उससे अलग रहने का निर्णय लेती है—यह निर्णय उसके आत्मसम्मान और नारी-स्वतंत्रता की पराकाष्ठा है। उसके बाद निशा अपने जैसी पीड़ित महिलाओं की मदद में लग जाती है और उन्हें रोजगार, शिक्षा तथा सुरक्षा प्रदान करने में सक्रिय भूमिका निभाती है। वह महिला-मुक्ति आंदोलन का प्रमुख चेहरा बन जाती है, क्योंकि उसके लिए स्त्री की मुक्ति केवल व्यक्तिगत मुकाम नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का लक्ष्य है। इस प्रकार, निशा का संघर्ष शिक्षा, आर्थिक स्वावलंबन, स्वाभिमान और नारी-स्वतंत्रता को जोड़ते हुए नारी-मुक्ति की एक आदर्श संरचना प्रस्तुत करता है। वह इस सत्य को प्रत्यक्ष रूप में जीती है कि एक जागरूक स्त्री न केवल अपने जीवन को बदलती है, बल्कि समाज में परिवर्तन की दिशा भी तय करती है।

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 ISSN No: 3049-4176

उपन्यास में व्यक्त सामाजिक चेतना

1. स्त्री-पुरुष समानता

सुशीला टाकभौरे का उपन्यास *'वह लड़की'* स्त्री-पुरुष समानता की अवधारणा को अत्यंत सशक्त और संवेदनशील रूप में प्रस्तुत करता है। उपन्यास स्पष्ट करता है कि समाज की संरचना पुरुष-सत्ता पर आधारित है, जहाँ स्त्री को द्वितीय श्रेणी का नागरिक माना जाता है। बाल-विवाह, दहेज, घरेलू हिंसा, पुत्र-प्रेम और स्त्री को बोझ समझने की मानसिकता उसी पितृसत्तात्मक सोच का परिणाम हैं। शैला, निशा और नमिता जैसे पात्रों के माध्यम से उपन्यास यह दर्शाता है कि स्त्री केवल घर और परिवार तक सीमित नहीं है; उसका भी व्यक्तित्व, इच्छाएँ, अधिकार और स्वतंत्र अस्तित्व है। शैला का वक्तव्य—*"हम भारत देश की नारी हैं, हम फूल नहीं, चिंगारी हैं"*—स्त्री-पुरुष समानता की वह चेतना है जो स्त्री को अपनी क्षमता पहचानने की प्रेरणा देती है। उपन्यास यह स्थापित करता है कि समाज तभी सशक्त और संतुलित बनेगा जब स्त्री और पुरुष दोनों समान अधिकारों और अवसरों के साथ आगे बढ़ें।

2. जाति, वर्ग और लिंग-अन्याय का प्रतिरोध

उपन्यास का दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष जाति, वर्ग और लिंग—तीनों स्तरों पर होने वाले अत्याचारों और शोषण के विरुद्ध प्रतिरोध की भावना को उजागर करता है। दलित स्त्रियाँ न केवल पितृसत्ता की शिकार हैं, बल्कि जातिगत भेदभाव और आर्थिक शोषण का बोझ भी वहन करती हैं। शम्मा का असामयिक मृत्यु, रेणुका के साथ ससुराल और मायके—दोनों स्थानों पर यौनिक हिंसा, तथा नमिता का दहेज-उत्पीड़न इस बात का प्रमाण है कि स्त्री के लिए जाति और लिंग का संयुक्त शोषण घातक रूप ले लेता है। किंतु उपन्यास में प्रतिरोध का स्वर भी उतना ही सशक्त है। शैला और निशा जैसे पात्र इस शोषण के विरुद्ध विद्रोह का मॉडल प्रस्तुत करते हैं। नमिता द्वारा पति के अत्याचार का विरोध करना, निशा द्वारा पति के दमन से अलग होकर स्वतंत्र जीवन चुनना, और रेणुका जैसी महिलाओं का सहायता समूहों से जुड़ना—ये सभी घटनाएँ प्रतिरोध के नए आयाम प्रस्तुत करती हैं। उपन्यास यह प्रतिपादित करता है कि परिवर्तन तभी संभव है जब दलित स्त्री अपनी आवाज़ को दबाए नहीं, बल्कि उसे शोषण की संरचनाओं को चुनौती देने के लिए इस्तेमाल करे।

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 ISSN No: 3049-4176

3. जागरूकता एवं संगठनात्मक प्रयास

'वह लड़की' में स्त्री-मुक्ति केवल व्यक्तिगत संघर्ष तक सीमित नहीं रहती; यह सामूहिक जागरूकता और संगठनात्मक प्रयासों तक विस्तृत होती है। शैला और निशा द्वारा स्थापित "अखिल भारतीय दलित महिला जागृति" संस्था इस बात का उदाहरण है कि जब स्त्रियाँ एकजुट होती हैं तो वे व्यक्तिगत स्तर से ऊपर उठकर सामाजिक परिवर्तन की दिशा में योगदान देती हैं। इस संस्था के माध्यम से पीड़ित महिलाओं को शिक्षा, रोजगार और सुरक्षा प्रदान की जाती है। उपन्यास यह भी बताता है कि सामाजिक बुराइयों—जैसे भ्रूण-हत्या, दहेज, घरेलू हिंसा और जातिगत दमन—के विरुद्ध संगठित प्रयास आवश्यक हैं। जन-जागरूकता, सम्मेलनों में भाषण, महिलाओं के साथ संवाद और सामूहिक निर्णय जैसी गतिविधियाँ उपन्यास का महत्त्वपूर्ण सामाजिक संदेश हैं। उपन्यास यह स्पष्ट करता है कि जब तक स्त्री स्वयं जागरूक होकर संगठनात्मक शक्ति नहीं जुटाती, तब तक सामाजिक परिवर्तन संभव नहीं। इस प्रकार, उपन्यास सामाजिक चेतना का एक जीवंत दस्तावेज़ बनकर न केवल समस्याओं को उजागर करता है, बल्कि समाधान के मार्ग भी प्रस्तुत करता है।

उपन्यास में नारी-सशक्तिकरण की अवधारणा

1. आत्मसम्मान, स्वायत्तता और निर्णय-क्षमता

सुशीला टाकभौरे के उपन्यास *'वह लड़की'* में नारी-सशक्तिकरण की अवधारणा आत्मसम्मान, स्वायत्तता और निर्णय-क्षमता के आधार पर विकसित होती है। उपन्यास में स्त्री की पीड़ा का चित्रण केवल सहानुभूति उत्पन्न करने के लिए नहीं, बल्कि स्त्री के भीतर छिपी शक्ति को पहचानने और उसे जागृत करने के लिए किया गया है। शैला, निशा और नमिता जैसे पात्र स्पष्ट करते हैं कि स्त्री की वास्तविक मुक्ति तब ही संभव है जब वह स्वयं अपनी आवाज़ को पहचानती है और अपने अधिकारों के लिए खड़ी होती है। नमिता का पति द्वारा बाल काटकर अपमानित किए जाने के बाद विद्रोह करना, निशा का दमनकारी पति से अलग रहकर स्वतंत्र जीवन चुनना, और शैला का असंख्य महिलाओं को जागरूक करने के लिए आगे आना—ये सभी घटनाएँ स्त्री के बढ़ते आत्मसम्मान और निर्णय-क्षमता को प्रदर्शित करती हैं। उपन्यास यह संदेश देता है कि स्त्री के भीतर आत्मविश्वास और स्वाभिमान का विकास समाज के पुरुषवादी ढांचे को चुनौती देने की पहली शर्त है।

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 ISSN No: 3049-4176

2. स्वायत्तता और आत्मनिर्भरता की दिशा

उपन्यास में नारी-सशक्तिकरण का दूसरा प्रमुख आयाम स्त्री की आर्थिक और सामाजिक स्वायत्तता है। टाकभौरे इस तथ्य को भलीभांति दर्शाती हैं कि आर्थिक रूप से निर्भर स्त्री अक्सर दमन और उत्पीड़न का शिकार होती है, जबकि आत्मनिर्भर स्त्री प्रतिरोध करने और अपने निर्णय स्वयं लेने की क्षमता प्राप्त करती है। निशा का मेहनत-मजदूरी करके अपने और अपनी बहनों की शिक्षा को पूरा करना, फिर सामाजिक रूढ़ियों को चुनौती देते हुए अंतरजातीय विवाह करना, तथा बाद में संस्था के माध्यम से महिलाओं को आर्थिक सहयोग देना—ये सभी स्त्री-मुक्ति के आर्थिक पहलुओं को उजागर करते हैं। इसी प्रकार, शैला द्वारा कई महिलाओं को रोजगार उपलब्ध कराना और रेणुका जैसी स्त्रियों को सुरक्षित जीवन प्रदान करना यह दिखाता है कि स्त्री को आर्थिक रूप से सशक्त बनाना समाज में व्यापक परिवर्तन की प्रक्रिया का अनिवार्य हिस्सा है। उपन्यास में बार-बार यह स्थापित किया गया है कि आत्मनिर्भर स्त्री ही अपने जीवन की दिशा स्वयं तय कर सकती है और पितृसत्ता की जकड़नों को तोड़ सकती है।

3. सामाजिक परिवर्तन की दिशा

'वह लड़की' नारी-सशक्तिकरण को केवल व्यक्तिगत मुक्ति नहीं मानता, बल्कि समाज के ढांचे में परिवर्तन लाने की एक सामूहिक प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत करता है। उपन्यास में स्त्री-सशक्तिकरण सामाजिक आंदोलनों, संगठनात्मक प्रयासों और सामूहिक चेतना के माध्यम से सामने आता है। शैला और निशा द्वारा स्थापित "अखिल भारतीय दलित महिला जागृति" संस्था इस बात का प्रमाण है कि जब स्त्रियाँ एकजुट होती हैं, तो वे समाज की जड़ मानसिकताओं को चुनौती देकर नई दिशा प्रदान कर सकती हैं। उनका उद्देश्य केवल उत्पीड़ित स्त्रियों को सहारा देना ही नहीं, बल्कि समाज को यह समझाना भी है कि स्त्री-पुरुष समानता और स्त्री का सम्मान सामाजिक विकास के लिए अनिवार्य है। उपन्यास यह संकेत करता है कि नारी-सशक्तिकरण तभी सार्थक होगा जब समाज स्त्री को बोझ नहीं, बल्कि शक्ति, क्षमता और परिवर्तन के स्रोत के रूप में देखना शुरू करे। इस प्रकार, *'वह लड़की'* नारी-सशक्तिकरण को एक सामाजिक क्रांति के रूप में प्रस्तुत कर उसे दलित और सामान्य स्त्री-जीवन की मुक्ति का मार्ग बताता है।

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 ISSN No: 3049-4176

सुशीला टाकभौरे के स्त्री-दृष्टिकोण का आलोचनात्मक मूल्यांकन

सुशीला टाकभौरे का स्त्री-दृष्टिकोण हिन्दी दलित साहित्य में एक विशिष्ट, साहसपूर्ण और नवचेतनापरक हस्तक्षेप के रूप में उभरता है। उनके साहित्य का मुख्य उद्देश्य स्त्री को उसके संपूर्ण मानवीय अस्तित्व में स्थापित करना है—न कि केवल घर, परिवार और परम्पराओं के दायरे में सीमित एक निष्क्रिय पात्र की तरह। साहित्यिक दृष्टि से देखा जाए तो टाकभौरे की कृतियाँ भावनात्मक आवेग, यथार्थ और सामाजिक संघर्ष का संतुलित संयोजन प्रस्तुत करती हैं। उनकी भाषा सीधी, सरल होने के बावजूद प्रभावशाली है, जिसमें दलित स्त्री के दुख, विद्रोह और आत्मसम्मान को बिना सजावट के, अपने मूल रूप में अभिव्यक्त करने की क्षमता है। *'वह लड़की'*, *'ज़रा समझो'*, *'कबूतरी'* और अन्य कहानियों में स्त्री के अनेक रूप—पीड़िता, प्रतिरोधकर्त्री, मार्गदर्शक और नेता—स्पष्ट दिखाई देते हैं। साहित्यिक दृष्टि से उनकी यह विशेषता महत्त्वपूर्ण है कि वे स्त्री को केवल सहानुभूति का पात्र नहीं बनातीं, बल्कि उसे सामाजिक संघर्षों का सक्रिय नायक बनाती हैं। उनके साहित्य में स्त्री-विमर्श पितृसत्ता के प्रतिरोध के साथ-साथ जातिगत शोषण के खिलाफ भी एक दोहरी लड़ाई के रूप में उभरता है, जो उनके योगदान को अन्य स्त्री-लेखन से अलग पहचान देता है।

समकालीन स्त्री-विमर्श से तुलना करने पर टाकभौरे की दृष्टि और भी आवश्यक प्रतीत होती है, क्योंकि मुख्यधारा का स्त्री-विमर्श प्रायः मध्यवर्गीय, शिक्षित, शहरी स्त्री की समस्याओं तक सीमित दिखाई देता है। इसके विपरीत, टाकभौरे दलित स्त्री की उस वास्तविकता को सामने लाती हैं, जिसकी पीड़ा तीन स्तरों पर विस्तृत है—जाति, लिंग और आर्थिक निर्धनता। वे स्त्री को केवल लैंगिक उत्पीड़न से जूझता हुआ नहीं दिखातीं, बल्कि जातिगत अपमान, असुरक्षा, श्रम-शोषण, हिंसा और सामाजिक बहिष्कार का भी सामना करती हुई दिखाती हैं। इस प्रकार उनका लेखन स्त्री-विमर्श में एक नई दिशा जोड़ता है—एक ऐसा विमर्श जो हाशिये की स्त्री को केंद्र में रखता है और उसकी आवाज़ को प्रमुखता प्रदान करता है। समकालीन विमर्श जहाँ स्वतंत्रता, शरीर, आत्मनिर्णय और समानता की बात करता है, वहीं टाकभौरे इन विचारों को दलित स्त्री के वास्तविक अनुभवों से जोड़कर और अधिक ठोस, संघर्षशील और सामाजिक-न्याय आधारित बनाती हैं। उनका दृष्टिकोण न केवल नारी-मुक्ति, बल्कि सामाजिक परिवर्तनों की अनिवार्यता को भी रेखांकित करता है। इस प्रकार, सुशीला टाकभौरे का स्त्री-दृष्टिकोण साहित्यिक, सामाजिक और वैचारिक

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 ISSN No: 3049-4176

तीनों स्तरों पर अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, जो दलित स्त्री-विमर्श में सशक्त आयाम जोड़ते हुए समकालीन स्त्री-साहित्य की पुनर्संरचना में निर्णायक भूमिका निभाता है।

निष्कर्ष

सुशीला टाकभौरे का उपन्यास *'वह लड़की'* दलित स्त्री-जीवन के त्रिस्तरीय संघर्ष—जाति, लिंग और वर्ग—को उजागर करते हुए स्त्री-चेतना और सामाजिक परिवर्तन का सशक्त दस्तावेज़ बनकर उभरता है। यह उपन्यास स्पष्ट करता है कि स्त्री के उत्पीड़न की जड़ें केवल घरेलू हिंसा या पारिवारिक परंपराओं में नहीं, बल्कि गहरे पैठे मनुवादी ढांचे, पितृसत्ता, आर्थिक निर्भरता और जातिगत विषमता में निहित हैं। शैला, निशा, नमिता और शम्मा जैसे पात्रों के माध्यम से लेखिका न केवल पीड़ा को चित्रित करती हैं, बल्कि प्रतिरोध की ऊर्जा और आत्मनिर्णय की क्षमता को भी उजागर करती हैं। इन पात्रों के जीवन-संघर्ष यह संदेश देते हैं कि स्त्री की मुक्ति बाहरी सुधारों से नहीं, बल्कि उसकी अपनी चेतना, शिक्षा, आर्थिक स्वतंत्रता और साहसपूर्ण निर्णयों से संभव है। उपन्यास इस विचार को भी पुष्ट करता है कि स्त्री-मुक्ति केवल व्यक्तिगत स्तर पर नहीं, बल्कि सामूहिक और संगठनात्मक प्रयासों पर आधारित होती है—इसका उदाहरण "अखिल भारतीय दलित महिला जागृति" जैसे समूहों में दिखाई देता है। टाकभौरे का साहित्य मुख्यधारा के स्त्री-विमर्श से आगे बढ़कर दलित स्त्री के अनुभवों को केंद्र में रखता है, जिससे स्त्री-सशक्तिकरण की अवधारणा और भी व्यापक, वास्तविक और संघर्षशील बन जाती है। संपूर्णतः *'वह लड़की'* यह स्थापित करता है कि स्त्री जब अपनी शक्ति, पहचान और अधिकारों को स्वयं स्वीकार करती है, तभी समाज में वास्तविक परिवर्तन संभव होता है। इस प्रकार, यह उपन्यास नारी-मुक्ति, सामाजिक न्याय और मानवतावादी मूल्यों की दिशा में एक प्रेरणादायक और क्रांतिकारी कृति सिद्ध होता है।

संदर्भ

1. अम्बेडकर, बी. आर. (2014). जाति का विनाश। क्रिटिकल क्वेस्ट।
2. आर्य, एस. (2019). दलित महिलाएँ: भारत में एक वैकल्पिक राजनीति की अग्रदूत। रूटलेज।
3. बामा। (2015). संगति: घटनाएँ (एल. होल्मस्ट्रॉम, अनुवादक)। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 ISSN No: 3049-4176

4. गुरु, जी. (1995). दलित महिलाएँ अलग तरह से बात करती हैं। इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 30(41/42), 2548–2550।
5. कांत, आर. (2018). दलित साहित्य और नारीवाद: अंतर्विषयक पहचानों का एक अध्ययन। रावत प्रकाशन।
6. कुमार, ए. (2016). दलित आख्यानों में महिलाओं का प्रतिनिधित्व। जर्नल ऑफ लिटरेचर एंड सोशल चेंज, 4(2), 45–59।
7. मोहंती, सी. टी. (2003)। सीमाओं के बिना नारीवाद: उपनिवेशवाद से मुक्ति का सिद्धांत, एकजुटता का अभ्यास। ड्यूक यूनिवर्सिटी प्रेस।
8. पवार, यू., और मून, वी. (2008)। हमने भी इतिहास रचा: अम्बेडकरवादी आंदोलन में महिलाएँ। ज़ुबान.
9. रेगे, एस. (2006). जाति लिखना, लिंग लिखना: दलित महिलाओं की प्रशंसा सुनाना। ज़ुबान.
10. शर्मा, टी. (2017)। समकालीन हिंदी उपन्यासों में महिला एजेंसी की बदलती गतिशीलता। हिंदी साहित्य समीक्षा, 12(1), 78-92.
11. सुनीता. (2021)। हिंदी दलित उपन्यासों में स्त्री विमर्श। राजकमल प्रकाशन.
12. टाकभौरे, एस. (2010)। वाह लड़की. लोकभारती प्रकाशन.
13. टाकभौरे, एस. (2014)। अन्य उपन्यास संग्रह। वाणी प्रकाशन.
14. थोराट, एस. (2004). जाति, बहिष्कार और हाशिये पर: एक लैंगिक परिप्रेक्ष्य। भारतीय सामाजिक न्याय पत्रिका, 7(1), 23–41।
15. यादव, एम. (2020)। दलित महिला साहित्य में आवाज़, प्रतिरोध और आत्म-सम्मान। भारतीय नारीवाद में अध्ययन, 5(3), 112–128।